E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
www.allstudyjournal.com
IJAAS 2021; 3(2): 199-201
Received: 15-02-2021
Accepted: 19-03-2021

डॉ. नीरव अडालजा
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
डॉ. भीम राव अम्बेडकर कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
डॉ. नीरव अडालजा
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
डॉ. भीम राव अम्बेडकर कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

बदलता भारत, बदलती हिन्दी

डॉ. नीरव अडालजा

प्रस्तावना

बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में पूरे विश्व में भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया अधिक तीव्र गति से घटित हुई, भारत भी इस भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया से अछूता नहीं रहा। 1991 के बाद भारत में आर्थिक उदारीकरण का प्रारम्भ हुआ। इस आर्थिक उदारीकरण और भूमण्डलीकरण के परिणामस्वरूप भारत की अर्थव्यवस्था में राजनीति में और समाज में और सांस्कृतिक जीवन में भी अनेक परिवर्तन हुए। भारतीयों की जीवन पद्धति में, जीवन शैली में और जीवन मूल्यों में भी बहुत बड़ा बदलाव आया। मीडिया ने और बाजार की प्रतिस्पर्द्धा ने हिन्दी भाषा के प्रति हमारी सोच और हमारे व्यवहार को बदला।

अतः हिन्दी 'भूमण्डलीकरण' की भाषा बन गई है। उसका स्वभाव तेजी से बदल रहा है। वह विश्वव्यापी संचार की सक्षम भाषा बनने की दिशा में अग्रसर है। इतिहास में शायद पहली बार हिन्दी इतनी बड़ी विनिमयमूलक भाषा बनी है। वह अनंतरूपों में बोली–बरती जा रही है। उसका ढाँचा लगातार टूट–फूट रहा है और वह निरंतर अस्थिर और परिवर्तनशीलता के दौर में आ गई है।

अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में हिन्दी भाषा के प्रयोग करने वालों की संख्या अब बहुत अधिक बढ़ी है। 2011 के जन सर्वेक्षण के इस तथ्य को भाषायी विमर्श में अधिक स्थान और अधिक महत्व नहीं दिया गया।

हिन्दी ठीक उन्हीं दिनों में आगे बढ़ी है, जिन दिनों में मीडिया आगे बढ़ा है और भूमण्डलीकरण हुआ है। भाषाविदों के लिए यह तथ्य आँखें खोलने वाला है कि हिन्दी का प्रश्न अब अंग्रेजी के होने या न होने से तय नहीं होता, न राजभाषा अधिनियम के लागू होने या न होने से तय होता है, हिन्दी का प्रश्न खुले बाजार में खुली स्पर्धा से तय हो रहा है और हिन्दी की लाख धिक्कारों के बावजूद हिन्दी बरतने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है। इससे सिर्फ अंग्रेजी के साथ ही उसके सम्बन्धों में बदलाव नहीं आ रहा, अन्य भारतीय भाषाओं के साथ उसके सम्बन्धों में भी बदलाव आ रहा है।

तब क्या कारण है कि जहाँ हिन्दी इस कदर बढ़ी है, अन्य भाषाएँ घटी हैं? इसका एक अंतर भाषा के बदलते भूगोल में निहित है और यह भूगोल भाषाओं के आर्थिक व्यवहार और उपादेयता सम्बन्धी 'परिवर्तनों' का परिणाम है। खासकर नौवें दशक यानी अस्सी से नब्बे के बीच हमारे समाजों में आए समाजार्थिक परिवर्तनों में उन परिवर्तनों को देखा जा सकता है जिसके चलते हिन्दी भाषा अपनी आरोपित 'दीनता–हीनता' के बावजूद विश्व में एक बड़ी 'तीसरे नम्बर की भाषा' की तरह उभरी है।

नौवें दशक में एकदलीय राजसत्ता के अस्थिर होते चले जाने की वजह से हिन्दी–भाषी क्षेत्र ने स्वयं को एक ऐसे जनमत क्षेत्र के रूप में पाया है जो अपने व्यवहार से राजसत्ता को स्थिर या अस्थिर कर सकता है। लगभग आधी आबादी आधी से कुछ कम संसदीय सीटों का भाग्य तय करती है। दूसरा कारण यह है कि गत दो दशकों में राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र हिन्दी भाषी क्षेत्रों में रहा। जे.पी. आन्दोलन ने जो 'भू–राजनीतिक' परिवर्तन किये, उनका मुख्य केन्द्र भी हिन्दी भाषी क्षेत्रों में ही रहा। मन्दिर और मण्डल के मुद्दों ने, उत्तर भारत के मध्य वर्ग, भूमण्डलीय बाजार ने और उससे जुड़े मीडिया के निचले स्तरों ने, निचली जातियों के समूह और उपसमूह बनाये और इन तमाम सामाजिक– राजनीतिक परिवर्तनों में हिन्दी एक विराट राजनीतिक–सांस्कृतिक विमर्श की भाषा बनी।

1991 के बाद में खोली गयी अर्थव्यवस्था के विस्फोट ने हिन्दी भाषा को सिर्फ राजनीतिक या सांस्कृतिक संवाद की भाषा तक ही सीमित नहीं रहने दिया, उसे उपभोग और बाजार की नई भाषा में भी ढाल दिया। हिन्दी भाषी नये मध्य वर्ग के उभार ने नए हिन्दी भाषी राजनेता पैदा किये। जिन्होंने हिन्दी की अनिवार्यता को रेखांकित ही नहीं किया बल्कि सत्ता का कारोबार करने वाले अन्य भाषा–भाषी जो अब तक दैनिक व्यवहार में अंग्रेजी से काम चलाते आये थे, अचानक राजनीतिक विमर्श में हिन्दी के बदले निर्णायक महत्व को समझे और यह सोचने को बाध्य हुए कि यदि देश चलाना है तो हिन्दी जरूरी है। इस तरह अन्य भाषा–भाषियो ने हिन्दी से घृणा करते हुए भी उसका महत्त्व समझा।

हिन्दी जनता अब एकमात्र वोट बैंक ही नहीं, सामाजिक जनसंचार की भाषा बनकर प्रस्तुत हुई। इसने हिन्दी का ऐसा ध्रुव बनाया जो अन्य भाषा–भाषियों को अपनी ओर खींचता है। यदि उपभोक्ता बाजार पर कब्जा करना है तो हिन्दी भाषी जनता की भाषा में जनसंचार जरूरी है। यह बात बहुत जल्दी बहुराष्ट्रीय निगमों की समझ में आ गई। आज स्थिति यह है कि हरेक बड़े उपभोक्ता ब्राण्ड का 'लौंच' मूलतः और सर्वप्रथम हिन्दी में 'लौंच' होता है। जिस दिन हिन्दी अखबारों में अंग्रेजी के शब्द देवनागरी में आने लगे और जिस दिन अंग्रेजी अखबारों के विज्ञापन कुछ रोमन में हिन्दी शब्द लिखने लगे, उसी दिन हिन्दी भाषा ने अन्य भाषाओं की वह ताकत खत्म कर दी जिसके बल पर वे हिन्दी को अपमानित किया करते थे।

'हिन्दी के बिना काम न चलेगा' यह अहसास लगभग उतनी ही तीव्रता से अन्य भाषा–भाषियों में हुआ जैसा कि हिन्दी भाषियों में इन दिनों यह अहसास है कि 'अंग्रेजी बिना काम नहीं चलने का', लेकिन हिन्दी भाषा–भाषी अंग्रेजी की ओर ठीक उस कारण से नहीं देखता जिस कारण से अंग्रेजी वाला इन दिनों हिन्दी की ओर देखता है। यह बाजार की, व्यापार की, मीडिया की हिन्दी है जो किताब की भाषा नहीं है बल्कि रोज बोली–बरती जाने वाली मैली–कुचैली, मिश्रित भाषा है जो अस्सी करोड़ आबादी के बाजार की भाषा है। इस भाषा में एक बार प्रवेश के बाद एक इतना बड़ा बाजार खुल जाता है जितना कुल यूरोप का नहीं है। बाजार की शक्तियों ने इसे जान लिया है।

मातृभाषा के रूप में हिन्दी जितनी बड़ी है उससे ज्यादा वह मनोरंजन, जनसंचार, सूचना और विनिमय की भाषा के रूप में फैली है। बड़े बाजार की भाषा होने के कारण वह एक ही साथ उपभोग, सत्ता, मीडिया, व्यापार, विनियम और मनोरंजन की भाषा भी है। अनेक गैर हिन्दी भाषी उसे बोलते, बरतते हैं। ज़ी, इण्डिया, स्टार न्यूज़, सोनी अनेक देशों में देखे जाते हैं और गैर हिन्दी भाषी भी उन्हें देखते हैं। मनोरंजन और उपभोक्तावादी बाजार की भाषा बनकर वह मातृभाषियों से बाहर पहुँचकर नए स्वीकृति क्षेत्र बना रही है। उसका किताबी रूप बदल रहा है, यही उसका नया भूगोल है जिसमें भूमण्डलीकरण की नई आर्थिक प्रक्रिया निहित है।

भाषा मूलतः ठोस सामाजिक–आर्थिक सम्बन्धों का नाम है। और ज्यों–ज्यों जनता जीवन जीने की प्रक्रिया में एक–दूसरे से संचार करती है, भाषा बदलती है। जनसंचार साधनों के बदलने से भाषा तेजी से बदलती है और यह सदा से होता आया है। इसी क्रम में बाजार का जनता से सूचना का आदान–प्रदान, विनिमय, जनसंचार माध्यमों में सूचना का विनिमय भाषा को लगातार बदलता है। भाषा कभी 'स्थिर' नहीं होती। किताबों में छपी जो भाषा दिखती है, वह कहने भर को स्थिर होती है वरना हर पाठक उसे अपने ढंग से बरतता है, बदलता है। भाषा का कभी कोई स्थिर रूप नहीं होता। जिसे व्याकरण कहा जाता है वह भी कोई अन्तिम ढाँचा नहीं होता। शब्द कोश ही भाषा को कैद करते हैं। वे सहारे होते हैं, बन्धन नहीं। इसलिए भाषा हमेशा प्रवाह में ही रहती है, अशुद्ध ही होती है। 'अशुद्ध' होना ही उसका शुद्धता का प्रमाण है, यह जीवन का प्रभाव है।

मीडिया, चूँकि एक जनसंचार कर्म है, इसलिए वह भाषा को एक ही साथ स्थिर करता है और परिवर्तनशील बनाता है। वह जितना व्यापक संचार करता है, उतना ही भाषा को एक रूप करता है किन्तु उतना ही भ्रष्ट भी करता है। खासकर प्रिंट मीडिया ने भाषा को एक मानक रूप देने में भूमिका निभाई है। इससे भाषा फैली है, हिन्दी फैली है। पाठकों का दूसरा राष्ट्रीय सर्वेक्षण बताता है कि इस वक्त देश में सर्वाधिक हिन्दी दैनिक पढ़े जाते हैं जिनके पाठकों की संख्या कोई तीस करोड़ है। एक अन्य सर्वेक्षण तो संख्या को और भी ज्यादा बताता है। यह पहली बार हुआ कि हिन्दी इस वक्त सर्वाधिक पढ़ी जाने वाली भाषा है। कोई इकसठ करोड़ लोग हिन्दी को अपनी मातृभाषा मानते हैं, यह बात भी एक भाषा सर्वेक्षण ने बताई है। यदि हम हिन्दी बोलने बरतने वालों का आंकलन करें तो उनकी संख्या आसानी से अस्सी–नब्बे करोड़ तक पहुँचती है।

दो–ढाई सौ साल पहले जब भारत में प्रिंट मीडिया शुरू हो रहा था और पत्रकारिता बढ़ रही थी तो हिन्दी के पाठक गिनती के ही रहे होंगे। प्रथम विश्व युद्ध के आसपास हिन्दी पत्रकारिता व्यावसायिक बनी यानी उसके स्वतंत्र पाठक (ग्राहक) बने। फिर धीरे–धीरे पत्रकारिता बढ़ती गई, हिन्दी बढ़ती गई। आज हिन्दी यदि देश की सबसे बड़ी भाषा है तो मीडिया के फैलाव के कारण ही है। यदि आज अस्सी–नब्बे करोड़ लोग हिन्दी बोलते–बरतते हैं तो हिन्दी मीडिया की वजह से ही बोलते–बरतते हैं।

बाजार की क्रान्ति ने उसमें अंग्रेजी शब्दों को भी प्रतिष्ठित कराया है। यह काम टी.वी. ने किया है कि हिन्दी को एक रोजमर्रा की बोलचाल की नई शैली दी है। यह हिन्दी एक नई बोली है जिसमें देश के साठ–सत्तर करोड़ दर्शकों के बीच किसी माल या ब्राण्ड को बेचने के लिए पुरजोर कोशिश की जाती है। उसमें 'अंग्रेजी शब्द' आते हैं। इसका कारण वह उपभोक्ता क्रान्ति है जो टी.वी. पैदा कर रहा है। किताबी और साहित्यिक हिन्दी से अलग यह 'हिंग्रेज़ी' या 'हिंगलिश' है जो उपभोक्तावादी समाज की भाषा है। उपभोक्ता क्रान्ति चूँकि ग्लोबल मुक्त बाजार की जरूरतों से जुड़ी है, इसलिए अंग्रेजी के बहुत सारे शब्द आते–जाते हैं। यही भाषा साठ–सत्तर करोड़ लोगों की बाजार की भाषा है। शुद्ध भाषा के अंग्रेजी हिन्दी अध्यापक, साहित्यकार इसे 'भ्रष्ट' समझते हैं जबकि जनता ऐसा नहीं समझती। समझती होती तो बच्चों को गली–मोहल्लों में खुलने वाले पब्लिक स्कूलों में अंग्रेजी पढ़ने नहीं भेजती।

टी.वी. की हिंग्रेजी मूलतः जनता के बीच फैल रही ग्लोबल होने की इच्छा और बाजार की शक्तियों द्वारा उसे ग्लोबल करने की इच्छा का परिणाम है। यह षडयंत्र नहीं है। यह भी एक भाषा है जिसमें अपना विचार है, शक्ति है क्योंकि यह करोड़ों को संचालित करती है, बाजार चलाती है, समाज को चलाती है। यह भाषा साहित्यिक भाषा को नष्ट नहीं करती है। बल्कि उसे व्यापक पाठक वर्ग भी दे रही है। प्रिन्ट मीडिया, टी.वी. और फिल्मों की बदौलत आज हिन्दी भाषा एक 'ग्लोबल' भाषा है। हिन्दी फिल्मों ने आरम्भ से ही अपने शीर्षकों के द्वारा, संवादों के द्वारा और फिल्मी गीतों के द्वारा हिन्दी को अधिक से अधिक स्वीकार्य, जनप्रिय और विश्वव्यापी बनाया। भाषा में भी आवश्यकतानुसार परिवर्तन होता है। एक सर्वेक्षण के अनुसार हिन्दी भाषा दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी भाषा है। पहले नम्बर पर चीनी है, दूसरे पर अंग्रेजी और तीसरे पर हिन्दी है। यह मीडिया से भी सम्भव हुआ है। हिन्दी फैले और मैली, अशुद्ध न हो, यह कैसे सम्भव है, हिन्दी फैल रही है।

लेकिन हिंदी की बढ़त भी बहुत कुछ बातें कहती है। पहली तो यह कि मीडिया और मनोरंजन के माध्यमों ने हिन्दी को एक ऐसी भाषा में बदल दिया है जो एक मिश्र और अपभ्रंश किस्म की भाषा है, जिसमें अन्य भाषाओं के शब्द आते–जाते हैं और जिसका अंग्रेज़ी के प्रति दुश्मनी का भाव, जो 60 और 70 के दशक में उग्र होकर सामने आया था, अब उसके साथ स्पर्धा के और मित्रता के भाव में बदल रहा है। हम जानते हैं कि अंग्रेजी ताकतवर की भाषा रही, सत्ता की भाषा रही है और इसलिए इसका वर्चस्व रहा है। यह विचित्र बात है कि हिन्दी न सत्ता की भाषा है, न ताकत की भाषा है, फिर भी लगातार बढ़ती हुई भाषा है तो क्या वह अन्य भाषाओं को ठीक उसी तरह ट्रीट करती है जिस तरह अंग्रेजी करती है या अन्य भाषाएँ हिन्दी को करती हैं। यह पहली बार हो रहा है कि सत्ता की भाषा हुए बिना हिन्दी बाजार की, उपभोक्ता क्रान्ति की, मनोरंजन की भाषा बनकर फैल रही है। वह विपणन–विनिमय और बाजार को गति देने वाली

भाषा बन गई। उपभोक्ता बाजार के नारों और विज्ञापनों की भाषा बन गई है। मीडिया की एक सक्षम भाषा भी इसलिए बनी है। इस तरह वह अपनी पुरानी संस्कृति की परम्परा और परिधि से थोड़ा बाहर आ पड़ी है।

हिन्दी ने जहाँ अपनी उपयोगिता बढ़ाई उसी क्षेत्र में उसका आकर्षण बढ़ा है। ऐसे क्षेत्र अनेक हो सकते हैं जहाँ हिन्दी अपनी उपयोगिता सिद्ध कर सकती है जैसे अनुवाद कर्म, संचार कर्म तथा भाषा तकनीक के अन्य क्षेत्र जो कम्प्यूटर–शिक्षा एवं सूचना तकनीक के साथ चल सकें। जब तक हिन्दी भाषा इस नए समाज के सेवा–उद्योग की भाषा नहीं बनेगी, उसका उद्धार नहीं होगा। हिन्दी के विद्वान हिन्दी के साहित्यवाद को छोड़कर भाषा की नई उपयोगिता, नए अनुप्रयोगों यानी नए बाजार की कल्पना करें और उसे उसके लिए तैयार करें तो हिन्दी की ज्यादातर समस्याएं स्वयं हल हो जायेंगी, उसके प्रति विरोध का भाव भी खत्म हो जायेगा, क्योंकि बाजार की स्पर्धा में जो टिका रहेगा, वही जीत सकेगा। इसका अर्थ यह नहीं कि अन्य भाषाओं को हिन्दी खत्म कर देगी उल्टे वे आपस में एक मित्र संवाद में आएंगी जैसेकि अब हिन्दी अंग्रेजी के साथ आयी है।

हिन्दी को शुद्धतावादी, साहित्यवादी, पुराणपंथी पंडिताऊ ढंग से पढ़ना अब हास्यास्पद है। वह नए ढंग से पढ़े जाने, समझे जाने की मांग करती है।

सहायक ग्रंथ सूची

1. भारत का भूमण्डलीकरण – (सं.) अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण–2007.
2. भूमण्डलीकरण की चुनौतियाँ – सच्चिदानंद सिन्हा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2007.
3. प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य – (सं.) विमलेशकांति वर्मा, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करण–2016.
4. भूमंडलीकरण बाजार और हिंदी – सुधीश पचौरी, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2004.
5. विश्व बाजार में हिंदी – महिपाल सिंह, देवेन्द्र मिश्र, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण–2008, नई दिल्ली।
6. भारतीय गंणतंत्र में हिंदी दशा और दिशा – नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, तीन मूर्ति भवन, नई दिल्ली।
7. हिंदी का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य – प्रो. प्रदीप श्रीधर, डॉ. शिखा श्रीधर, श्रुति बुक्स प्रकाशन, प्रथम संस्करण–2017, गाजियाबाद।